भारतीय समाज और शिक्षा

❑ डॉ. हेमेन्द्र चंडालिया

इक्कसवीं सदी के मुहाने पर खड़े होकर भारतीय समाज और शिक्षा पर विचार करते समय यह सवाल पैदा होता है कि खंड-खंड में बंटी शिक्षा ही क्या खंडित भारतीय समाज का कारण तो नहीं? 'सा विद्या विमुक्तये' जैसे विचार आधी शताब्दी की स्वाधीनता के बाद भी लगभग आधी आबादी को गरीबी, कुपोषण, अशिक्षा, धर्मान्धता, जाति आधारित ऊंच नीच से मुक्ति क्यों नहीं दिला पाए? क्या देश की प्राथमिकताओं में शिक्षा का स्थान अग्रणी रहा? अब समय आ गया है जब इन सब विषयों पर सिलसिलेवार विचार किया जाये ।

भारत सरकार द्वारा वर्ष 1999-2000 के आर्थिक सर्वेक्षण में प्रकाशित मुद्दे एवं प्राथमिकताएं में शिक्षा का उल्लेख दो स्थानों पर हुआ है । पहले स्थान पर राज्य की वित्तीय स्थिति के संदर्भ में कहा गया है कि प्राथमिक शिक्षा सार्वजनीकरण एवं स्वास्थ्य जैसे सामाजिक सेवाओं के क्षेत्र में समुचित कार्य के लिए राज्य का वित्तीय स्वास्थ्य ठीक होना आवश्यक है । इन क्षेत्रों में पिछले पचास वर्षों में प्राप्त उपलब्धियों को अन्य विकासशील देशों की तुलना में बहुत कम बताया गया है तथा वर्तमान में पांचवें वेतन आयोग द्वारा संस्तुत वेतन देने के कारण राज्य की माली हालत में आई गिरावट को इन क्षेत्रों में अपेक्षित कार्य न हो पाने का जिम्मेदार बताया गया है । दूसरी जगह उच्च शिक्षा में निजीकरण की वकालत करते हुए कहा गया है कि निजी क्षेत्र में उच्च गुणवत्ता वाली शिक्षा के प्रसार हेतु दीर्घकालीन निवेश को आकर्षित करने के लिए तर्कसंगत एवं स्थिर नीतिगत संरचना की आवश्यकता है । आर्थिक रूप से लाभदायक गुणवत्ता वाली उच्च शिक्षा के लिये आर्थिक आधार पर उच्च शिक्षा की दरें निर्धारित करने की भी वकालत की गई है । निष्कर्षत: यही कहा जा सकता है कि सन् 2000 में देश की प्राथमिकता शिक्षा का निजीकरण एवं उच्च शिक्षण संस्थाओं को लाभ देने वाली इकाईयों में परिवर्तन करना है । शिक्षा में सूचना प्रौद्योगिकी के विस्तार तथा सूचना प्रौद्योगिकी की शिक्षा में प्रचार हेतु निजी क्षेत्र को प्रोत्साहन इस नई शताब्दी की पीठिका के प्रमुख लक्ष्य हैं ।

देश में शिक्षा के संदर्भ में सरकारी नीति के इस परिदृश्य में भारतीय समाज की चर्चा करना आवश्यक है । प्रारंभिक शिक्षा मुख्यतया शहरों में पहले ही निजी क्षेत्र के हवाले की जा चुकी है। राजस्थान में प्राथमिक शालाओं को प्रारंभ करने के लिये पंजीकरण या मान्यता की कोई आवश्यकता नहीं है । अब उच्च शिक्षा भी निजीकरण के फलस्वरूप ऐसे प्रबंधन के नियंत्रण में आने जा रही है जो शिक्षा को एक व्यवसाय से अधिक कुछ नहीं समझते । भारत में चाहे वैदिक काल रहा हो, मध्य काल रहा हो या आधुनिक काल, शिक्षा के सर्वाधिक अवसर तथा लाभ अभिजात्य वर्ग को ही मिले हैं। सत्ता हस्तांतरण के बाद एक लोक कल्याकारी राज्य के रूप में गठित देश के संविधान में सभी के लिये शिक्षा का लक्ष्य रखा गया और वांछित राजनीतिक इच्छा शक्ति का परिचय नहीं दिया गया । वर्तमान स्थिति में निजीकरण को प्रोत्साहन देकर शिक्षा के व्यावसायीकरण को नीतिगत स्वीकृति दी गई है । शिक्षा पर सकल राष्ट्रीय आय के 6 प्रतिशत का व्यय किया जाना शिक्षा पर गठित विभिन्न आयोंगों तथा 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति में आवश्यक माना गया था किन्तु यह प्रतिशत लगातार गिरता रहा है।

वर्तमान में प्रचलित नीतियों के चलते इस प्रतिशत के और भी गिरने की संभावना है । निजी विश्विद्यालयों के गठन की स्वीकृति, प्रौद्योगिकी, चिकित्सा, प्रबंध आदि की शिक्षा को निजी हाथों में सौंपने तथा अनुदान प्राप्त संस्थाओं के अनुदान में शनै: शनै: कटौती के कारण राज्य का शिक्षा में खर्च कम होते जाने की संभावना है ।

विभिन्न पंचवर्षीय /वार्षिक योजनाओं मे शिक्षा पर खर्च -

क्र.	योजना	प्रतिशत राशि
1.	प्रथम	7.86
2.	द्वितीय	5.83
3.	तृतीय	6.87
4.	वार्षिक योजनाएं	4.86
5.	चतुर्थ (1970-75)	5.04
6.	पांचवी (1975-80)	3.27
7.	छठी (1980-85)	2.70
8.	सातवीं (1985-90)	3.55
9.	वार्षिक योजना (1990-91)	4.00
10.	वार्षिक योजना (1991-92)	4.00

11.	आठवीं	(1992-97)	4.5
12.	वार्षिक योजना	(1997-98)	4.1
13.	वार्षिक योजना	(1998-99)	5.8
14.	वार्षिक योजना	(1999-2000)	4.5

यह बात सही है कि निरंतर घटते विनियोग के बावजूद न सिर्फ साक्षरता बढ़कर 1991 में 52.21 प्रतिशत हो गई, बल्कि महिलाओं में भी शिक्षा का खासा प्रचार हुआ । 1950-51 में उच्च शिक्षा में जहां प्रत्येक 100 पुरूषों के समक्ष महिलाओं की संख्या 14 थी 1995-96 में यह बढ़कर 52 हो गई । पर राष्ट्रीय स्तर पर एकत्रित समंक वास्तविक तस्वीर नहीं दे पाते । शिक्षा के अवसरों के वितरण में इतनी असामनता है कि उपेक्षित क्षेत्रों के बारे में औसत आंकड़ों के आधार पर अंदाज लगाया ही नहीं जा सकता। उदाहरण के लिये उदयपुर जिले की साक्षरता दर 1991 में की गई जनगणना के आधार पर 34.38 प्रतिशत थी किन्तु शहरी क्षेत्र में जहां यह 74.44 प्रतिशत थी वहीं ग्रामीण क्षेत्र में यह मात्र 25.81 प्रतिशत तथा ग्रामीण महिलाओं में मात्र 10.33 प्रतिशत थी । ऐसी स्थिति में उदारवाद के पाश्चात्य आदर्श को स्वीकार कर तथा विश्व बैंक एवं अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के इशारे पर सरकारों द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में अपना हाथ खींच लेने की नीति से ग्रामीण क्षेत्रों तथा कमजोर वर्ग के लोगों के जीवन में सामाजिक बदलाव को गति देने के प्रयास में बहुत अवरोध पैदा हो रहे हैं ।

शिक्षा का व्यावसायीकरण अर्थात लखपति बनेगा करोड़पति : शिक्षा पर सरकार सकल राष्ट्रीय आय का पांच प्रतिशत से भी कम खर्च कर रही है फिर भी दुनिया में सूचना क्रांति के अग्रिम दस्ते में भारतीय ही हैं । किन्तु अब साफ तौर पर स्थापित हो गया है कि तकनीकी प्रौद्योगिकी, चिकित्सा, प्रबंधकीय शिक्षा जैसे क्षेत्र में वही छात्र अध्ययन कर सकता है जिसके पास इतना पैसा हो कि वह लगभग एक लाख रूपया अपने पाठ्यक्रम के दौरान खर्च कर सके । पेमेन्ट सीट के नाम पर धनिकों द्वारा आरक्षण का एक नया स्वरूप प्रचलित कर दिया गया है जिसे शासक वर्ग का समर्थन भी हासिल है, जिसके चलते साधनहीन वर्ग शिक्षा के अवसरों से वंचित किया जा रहा है । राजस्थान में स्वतंत्रतापूर्वक राष्ट्रीय नवनिर्माण की भावना से प्रारंभ धर्मनिरपेक्ष शिक्षण संस्थाएं दम तोड़ रही हैं जबकि अनुदान न लेने वाली व्यावसायिकता के आधार पर संचालित एवं राजनीतिक कार्यकर्ताओं के निर्माण के उद्देश्य से संचालित कर्मचारियों एवं अध्यापकों को पूरा वेतन न देने वाली संस्थाएं फल फूल रही हैं । सरकारी विद्यालयों में भी कंप्यूटर शिक्षा अनिवार्य कर उसका ठेका निजी प्रतिष्ठानों को देकर निजी क्षेत्र को मुनाफा कमाने का अवसर प्रदान किया जा रहा है । विद्यार्थी जहां 350 रुपये फीस देकर पांच विषय पढ़ता है । वहीं 800 रुपये सिर्फ कंप्यूटर की शिक्षा पाने के लिये उसे देना पड़ता है । भारतीय शिक्षा नीति में आए परिवर्तन विश्व बैंक के 1986 के सुझाव रूपी आदेशों की पृष्ठभूमि में ही संपन्न हो रहे हैं । आर्थिक उदारीकरण के तहत सरकारी सोच में जो परिवर्तन आया है, वह है शिक्षा के प्रति अपनी जिम्मेदारी से पल्ला झाड़ लेना । विश्वविद्यालयों में शिक्षकों के 633 खाली पद तथा अनुदान प्राप्त शैक्षणिक संस्थाओं में पदों में कटौती इसी परिवर्तन के संकेत हैं।

पब्लिक रिपोर्ट ऑन बेसिक ऐजूकेशन (प्रोब रिपोर्ट) 1999 में बताया गया है कि प्राथमिक विद्यालय भेजने के लिये सरकारी विद्यालय में जहां 318 रूपये वार्षिक व्यय प्रति विद्यार्थी आता है वहीं निजी विद्यालय में यह खर्च 940 रूपये प्रति विद्यार्थी औसत रूप में आता है । उसके बावजूद सरकारी तौर पर यह घोषणा की गई कि प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनिकरण के लिये उसे निजी क्षेत्र को सौंप दिया जाना चाहिए । जबकि स्थिति यह है कि मात्र 15 प्रतिशत बालक एवं 9 प्रतिशत बालिकाएं पांचवीं कक्षा तक पढ़ पाती हैं । उच्च शिक्षा को बेरोजगारों की भीड़ पैदा करने वाली व्यवस्था बताया जाता है जबकि मात्र 9 प्रतिशत बालक और 3 प्रतिशत बालिकाएं दसवीं कक्षा से आगे पढ़ पाते हैं । उस पर उच्च अध्ययन के बाद भी रोजगार के अवसरों का अभाव लोगों में शिक्षा के प्रति अलगाव को बढ़ाता है । पूंजी केंद्रित विकास के मॉडल की अवधारणा के चलते मशीनीकरण, कंप्यूटरीकरण का बोलबाला है । राजस्थान सरकार ने वित्तीय वर्ष 2000-2001 में दस हजार पद समाप्त करने की घोषणा की है । अर्थव्यवस्था की दोषपूर्ण नीतियों से उत्पन्न समस्याओं का हल शिक्षा व्यवस्थाओं में ढूंढने के निरर्थक प्रयास किए जा रहे हैं । प्रबंधन, विपणन एवं सूचना सम्प्रेषण के लिये पाठ्यक्रम प्रति पल लोकप्रिय होते जा रहे हैं जो कहीं भी मनुष्य को सम्पूर्ण विकास तथा अपनी विचारधारा का परिष्कार करने का प्रशिक्षण नहीं देते । लिबरल एजूकेशन अर्थात कला, समाज, विज्ञान, साहित्य, प्राकृतिक विज्ञान आदि को अनुपयोगी ठहराकर पहले ही नकारा जा चुका है । ऐसे समय में एक ओर जहां पाठ्यक्रमों को नई आवश्यकताओं के अनुरूप अधुनातन बनाये जाने की आवश्यकता है वहीं उन तत्वों को भी बनाए रखना चाहिए जो मनुष्य को मनुष्य बनाते हैं । पाठ्यक्रमों की रूढ़िगत अलोचशीलता के स्थान पर ज्यादा खुले अंतरविषयक सक्रिय सृजनात्मकता का विकास करने वाले ऐसे पाठ्यक्रमों का विकास होना चाहिए जिसके बाद व्यक्ति को रोजगार दफ्तर की कतार में नहीं खड़ा होना पड़े । कला से विज्ञान, वाणिज्य या अभियांत्रिकी अथवा

चिकित्सा शिक्षा से पुन: कला के क्षेत्र में आवागमन को निर्बाध बना दिया जाना चाहिए । सबसे महत्वपूर्ण यह तथ्य है कि जहां शिक्षा को अर्थव्यवस्था की मांग के अनुरूप अनुकूलन चाहिए, वहीं अर्थव्यवस्था में देश में उपलब्ध प्राकृतिक एवं मानवीय संसाधनों को उपयोग कर पाने की क्षमता विकसित की जानी चाहिए । जनतांत्रिक मूल्यों में आस्था, नागरिक स्वतंत्रता की समझ, सामूहिक हित को समझकर एकजुटता के साथ संघर्ष करने की ललक ऐसे जीवन मूल्य है जिन्हें शिक्षा की प्राथमिकताओं में सर्वोच्च स्थान मिलना चाहिए ।

सूचना प्रौद्योगिकी एवं प्रबंधकीय शिक्षा के इस दौर में यह समझना आवश्यक है कि कौशल का विकास, सूचनाओं का संग्रहण एवं त्वरित सम्प्रेषण शिक्षा का एक अंग हो सकते हैं, कोई कौशल हो सकते हैं, सम्पूर्ण शिक्षा नहीं । शिक्षा व्यक्तित्व के विकास का एक माध्यम है । इस दृष्टि से एक बार फिर इन तथ्यों पर विचार करना पड़ेगा कि इस देश के लिये, इस भारतीय समाज के लिये शिक्षा का क्या स्वरूप हो?

भारतीय समाज सहकारिता के आधार पर चलने वाला समाज रहा है। पूंजीवादी प्रभाव के कारण यह गलाकाट प्रतिस्पर्धा वाले प्रतियोगी समाज के रूप में ढलता जा रहा है । यह परिवर्तन एक भयावह दिशा की ओर संकेत करता है । शिक्षा, जिसका मुख्य लक्ष्य गैर बराबरी को समाप्त करना है तथा इस उद्देश्य के लिये कमजोर वर्गों को सबल बनाना है, अगर आर्थिक रूप से संपन्न वर्ग तक ही सीमित हो गई तो वर्ग संघर्ष अनिवार्य हो जायेगा । जिस तरह की विविधताएं भारतीय समाज में मौजूद हैं उसमें शिक्षा को बाजार की शक्तियों से संचालित होने के लिये नहीं छोड़ा जा सकता। आर्थिक विषमता के जिस स्तर तक भारतीय समाज बंटा है उसमें यह हमेशा आवश्यक होगा कि सदियों से वंचित और उपेक्षित समाज को संरक्षण प्रदान किया जाये ।

सूचना प्रौद्योगिकी एवं प्रबंधकीय शिक्षा के इस दौर में यह समझना आवश्यक है कि कौशल का विकास, सूचनाओं का संग्रहण एवं त्वरित सम्प्रेषण शिक्षा का एक अंग हो सकते हैं, कोई कौशल हो सकते हैं, सम्पूर्ण शिक्षा नहीं । शिक्षा व्यक्तित्व के विकास का एक माध्यम है । इस दृष्टि से एक बार फिर इन तथ्यों पर विचार करना पड़ेगा कि इस देश के लिये, इस भारतीय समाज के लिये शिक्षा का क्या स्वरूप हो? क्या हम मुनाफा केन्द्रित एक यंत्रीकृत समाज चाहते हैं या एक मानवीय समाज ? और अगर हमारा लक्ष्य एक मानवीय समाज की रचना करना है तो उसकी क्या प्राथमिकताएं होंगी, यह भी तय किया जाना चाहिए । आर्थिक संकटों का समाधान जनपक्षीय आर्थिक नीतियों के उपयोग से होगा । हालांकि शिक्षा इस कार्य में मदद कर सकती है फिर भी हर आर्थिक संकट के लिये शिक्षा को दोषी ठहराकर उसे संसाधन विहीन करना तर्क संगत नहीं है । बेहतर यह है कि अर्थव्यवस्था एवं मानव संसाधन के नियोजन एवं तालमेल में सुधार लाया जाये । ◆